॥ ओ३म् ॥

आर्याभिविनयः ॥

प्राकृतभाषानुवादसहितः

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिना निर्मितः

सर्वलोकहिताय

अजमेरनगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

संवत् १९७७ वि०

चतुर्थवार २००० प्रति. } दयानन्दाब्द ३७. { मूल्य ॥=)

ओ३म् ॥

अथार्य्याभिविनयोपक्रमणिकाविचारः ।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः । भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥ चक्षुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले । दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ २ ॥ बहुभिः प्रार्थितः सम्यग्ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना । हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ॥ ३ ॥ वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया । क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥ ४ ॥ स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः । विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥ विमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम् । मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोऽस्ति सदेश्वरभागधिकः ॥ ६ ॥

विशेषभागी इ वृणोति यो हितं, नरः परात्मानमतीवमानतः । अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया, स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥ ७ ॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सब का आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों । हे कृपानिधे ! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करनेवाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे ॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ २ ॥ बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझ से प्रीति से कहा तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो इसलिये इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ ३ ॥ इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के मूल मन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है जिससे सब लोगों को सुखपूर्वक बोध हो और ब्रह्मज्ञान यथार्थ हो ॥ ४ ॥ इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों की बढ़ानेवाली परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना तथा धर्मादि विषय का

वर्णन किया है ॥ ५ ॥ जो ब्रह्म निर्मलसुखकारक, पूर्ण काम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सब से सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है ॥ ६ ॥ जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्यविद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द परमात्मा की प्राप्तिरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है और दुःखसागर से छूट जाता है परन्तु जो विषय लम्पट, विचाररहित, विद्या, धर्म, जितेन्द्रियता, सत्सङ्गरहित, छल, कपट, अभिमान, दुराग्रहादि दुष्टतायुक्त है सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है ॥ ७ ॥ इसलिये जन्म मरण ज्वरादि पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है इस से सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर हो के इस लोक (संसार व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इन की सिद्धि यथावत् करें यही मनुष्यों की कृतकृत्यता है। इस आर्य्याभिविनय ग्रंथ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर

सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है, दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता इससे व्यवहार विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तार-पूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायंगे जैसे (तदेवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुरित्यादि य० संहिता प्र०, इन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि० ऋ० सं० प्र०, बृह-स्पतिर्वै ब्रह्म गणपतिर्वै ब्रह्म, प्राणो वै ब्रह्म, आपो वै ब्रह्म, ब्रह्मह्यग्निरित्यादि शतपथ ऐतरेय ब्राह्मणादि० प्र० । और महान्तमेवात्मानमित्यादि०) निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है। तथा मुखादग्निरजायतेत्यादि० य० सं० प्र० वायोरग्निरित्यादि० ब्राह्मण प्र० तथा अग्निरग्रणी-र्भवतीत्यादि निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुण-वाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि वह लिया जाता है इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायँगे जिससे सायणादिकृत भाष्य दोष और उसके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थ दोषरूप वेदों के कलंक निवृत्त होजायँगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्त्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी। इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य

न फसें। किन्च सब प्रकार के मनुष्य अति उत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो, जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करें, यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा॥

इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा॥

॥ ओ३म् ॥

तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

अथार्याभिविनयः प्रारम्भः ॥

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥१॥
*ऋ० अ० १ । अ० ६ । व० १८ । मं० ९ ॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमान्, न्यायकारिन्, हे जगदीश सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, हे वि-

---

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना, क्योंकि आगे केवल अङ्क संख्या लिखी जायगी।

ऋ० १ । ६ । १८ । ९ ॥ इनसे अष्टक अध्याय वर्ग मन्त्र जान लेना।

श्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक, हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, हे सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धनादे, हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मंगलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो, हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप वरुण अर्थात् सब से परमोत्तम हो, सो आप हम को परम सुखदायक हो, हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन्! आप अर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो, हे परमैश्वर्य्यवन्, इन्द्रेश्वर! आप हम को परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये। हे महाविद्यावाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सब से बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनन्त पराक्रमेश्वर

विष्णो ! आप हमको अनन्त सुख देओ जो कुछ मागेंगे सो आप से ही हम लोग मागेंगे सब सुखों का देनेवाला आप के विना कोई नहीं है सर्वथा हम लोगों को आप का ही आश्रय है । अन्य किसीका नहीं क्योंकि सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयामय सब से बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे, आप का तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे यह हमको दृढ़ निश्चय है ॥ १ ॥

मूलमन्त्र स्तुति विषय.

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ २ ॥ ऋ० १।१।१।१॥**

व्याख्यान— हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो आप की मैं स्तुति करता हूं, सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है, हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति प्रार्थना और उपासनादि करो जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्यको शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिस से हम को व्यवहार ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है, वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है, हे सर्वहितोपकारक !

आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो, हे यज्ञदेव ! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक आप ही हो "होतारम्" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करनेवाले हो "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करनेवाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो। सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! इसलिये मैं वारंवार आपकी स्तुति करता हूं इसको आप स्वीकार कीजिये जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥ २ ॥

मूल प्रार्थना

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥ ऋ० १ । १ । १ । ३ ॥

व्याख्यान— हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढांग धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीरपुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को मैं प्राप्त होऊं तथा आप की कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥ ३ ॥

मूल स्तुति

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान— हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ! ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सब के इष्टदेव हो ॥ ४ ॥

मूल स्तुति.

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥ ऋ० १।१।१।५॥

व्याख्यान—हे सर्वदृक् ! सब को देखनेवाले "क्रतुः" सब जगत् के जनक "सत्यः" अविनाशी अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्यश्रवणादि आश्चर्यगुण आश्चर्यशक्ति आश्चर्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है, हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्यगुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हो सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो वह राज्य आपका ही है हम तो केवल आप के पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥ ५ ॥

मूल प्रार्थना.

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥ ऋ० १ । १ । २ । १ ॥

व्याख्यान— हे "अङ्ग" मित्र ! जो आप को आत्मादि दान करता है, उसको "भद्रं" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो, हे "अंगिरः" प्राणप्रिय ! यह आपका सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हम को अत्यन्त सुखकारक है आप मुझ को ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये जिससे सब दुःख दूर हों, हमको सदा सुख ही रहे ॥ ६ ॥

मूल स्तुति

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ७ ॥ ऋ० १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान— हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हम को प्राप्त हो हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिये "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) हम दीनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज़ समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर होओ ॥ ७ ॥

मूल प्रार्थना.

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८ ॥ ऋ० १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्यान— हे वाक्पते ! सर्व विद्यामय ! हम को आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट, अन्नादि के साथ वर्त्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आप के अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आप के विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों ॥ ८ ॥

मूल स्तुति

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १ ॥ ऋ० १।१।९।२ ॥

व्याख्यान— हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ईशान (स्वामी) और उत्पादक हो "वार्य्याणाम्" वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो "सोमे" और उत्पत्तिस्थान संसार आप से उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्यवान् आप को (अभिप्रगाय) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें (यथावत्) स्तुति करें जिससे आप की कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

मूल प्रार्थना

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् । पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ १० ॥ ऋ० १ । ६ । १५ । ५ ॥

व्याख्यान— हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान (रचनेवाले) हो "धियं जिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सब के पोषक हो, उन आप का हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धः, "रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ॥ १० ॥

मूल स्तुति.

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ ११ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । १६ ॥

व्याख्यान— हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से लेके सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊँचे नीचे स्थानों से संयुक्त बनाये तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे । हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो, कैसा है वह विष्णु ? जिस ने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

मूल प्रार्थना.

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो
यविष्ठ्य ॥ १२ ॥ ऋ० १ । ३ । १० । १५ ॥

व्याख्यान— हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो "धूर्त्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो जो हम को मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सब से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

मूल स्तुति

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः। चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १३ ॥ ऋ० १।४।१४।१२॥

व्याख्यान— हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो, इस से हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "आपः" अन्तरिक्षलोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो, कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥१३॥

* मूल प्रार्थना *

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥१४॥ ऋ० १।४।१०।८॥

व्याख्यान—हे यथा योग्य सब को जाननेवाले ईश्वर ! आप "आर्यान्" विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो "ये च दस्यव" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि दोषयुक्त उत्तम कर्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त होजाय किंवा हमारे वश में ही रहें "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो मैं भी "सधमा०" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की "चाकन" कामना करता हूं सो आप पूरी करें ॥१४॥

मूल स्तुति

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः । नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १५ ॥ ऋ० १।४।१४।१४ ॥

व्याख्यान— हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो उस की व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सक्ता, तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्टलोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पासके "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं

पा सकते * हे परमात्मन् ! आप का पार कौन पा सके ? क्योंकि "एकः" एक (अपने से भिन्न सहाय रहित) स्वसामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आप ने ही उत्पन्न किया है; फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पासकें तथा (अन्यत्) आप जगत्रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और प्रलय यथाकाल में करते हो इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है ॥ १५ ॥

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का दृष्टान्त जानना ।

मूल प्रार्थना.

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी नं ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १६ ॥ ऋ० १ । ३ । १० । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म ! आप ऊर्ध्व सब से उत्कृष्ट हो, हम को कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा, हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर ! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितराम्पाहि) सदैव अलग रक्खो तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो, हे सत्यमित्र न्यायकारिन् ! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हम से शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ) (कृधी न ऊर्ध्वान्) हे कृपानिधे ! हम को विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुखसंपादनादि गुणों में सब नर

देहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सब से अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना), आरोग्य, देह, शुद्ध मान सबल और विज्ञान इत्यादि के लिये हम को उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो "विदा" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हम को रक्खो ॥ १६ ॥



मूल स्तुति

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १७ ॥ ऋ० १ । ६ । १६ । १० ॥

व्याख्यान— हे त्रैकाल्याबाधेश्वर ! "अदितिर्द्यौः" आप सदैव विनाश रहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो "अदितिरन्तरिक्षम्" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाता हो "अदितिर्माता" आप प्राप्त मोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाश रहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं "पञ्च-

जना अदितिः” पंचप्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आप के रचे और आप के नाम भी हैं “जातमदितिः” वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (अविनाशभूत) भी होजाते हैं “अदितिर्जनित्वम्” वे ही अविनाशी स्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं * ॥१७॥

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहां ईश्वराभिप्रेत से अर्थ किया, सो सप्रमाण जानना चाहिये ॥

मूल प्रार्थना.

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १८ ॥ ऋ० १।६।१७।१ ॥

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्त्ती राजाओं की नीतिको "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो, आप "वरुण." सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हम को वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सब के मित्र शत्रुतारहित हो हम को भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो हम को भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो सो हम को भी आप तादृश करैं जिससे "देवैः, सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों, हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

मूल प्रार्थना।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १९ ॥ ऋ० १ । ६ ।
१९ । ५ ॥

व्याख्यान— हे सोम, राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम, सब का सार निकालनेहारे प्राप्तस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो तुम्हीं सब के राजा "उत" और "वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो भद्रस्वरूप भद्र करने वाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

मूल प्रार्थना.

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ २० ॥ ऋ० १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान— हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता किन्तु हम को आप की सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा जो आप का मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो ॥ २० ॥

मूल प्रार्थना.

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । २० ॥

व्याख्यान— हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सब के जानने योग्य, जिसको प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहां से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं वह परमेश्वर का पद है किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में चक्षु नेत्रकी व्याप्ति वा सूर्यका प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है अन्यथा जीव को कभी परम सुख नहीं मिलता, इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१ ॥

मूल प्रार्थना.

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २२ ॥ ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान— (परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बंदूक), धनुष्, बाण, करवाल (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न देसकें "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थांभने के लिये "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो जिस से तुम से लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो परन्तु

"मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो उस का पराजय ही सदा हो, हे बन्धुवर्गो ! आओ अपने सब मिल के सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

मूल स्तुति.

विष्णोः कर्माणिपश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥२३॥ ऋ० १।२।७। १९॥

व्याख्यान– हे जीवो! "विष्णोः" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिस से हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से है, क्योंकि "इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इस का वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सक्ता इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥२३॥

मूल प्रार्थना.

परांणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥ ऋ० ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान—हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे । हे दातः ! "सुविदा, नो, वसू, कृधि" "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही हो तथा "बोधि" हम को अपने ही जानो, हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ २४ ॥

मूल प्रार्थना.

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २५ ॥ ऋ० ५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान— हे ईश्वर ! "भगः" आप और आप का दिया हुआ ऐश्वर्य्य "शंनः" हमारे लिये सुखकारक हो और "शमु, नः, शंसो अस्तु" आप की कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो "पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः" संसार के धारण करने वाले आप तथा वायु प्राण और सब धन आनन्ददायक हों "शन्नः, सत्यस्य" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादि लक्षणयुक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो "शं, नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥ २५ ॥

मूल स्तुति

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने र॒थीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥ ऋ० ५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान— हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है अन्य कोई नहीं "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उस के यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है "सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो । हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

मूल प्रार्थना

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त। शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २७ ॥ ऋ० ५। ३। २७। २५॥

व्याख्यान— हे भगवन्! "तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुणः" चन्द्रमा "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः" जल "ओषधिः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आप की आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें हे, रक्षक! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आप की कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहैं "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥ २७ ॥

मूल स्तुति.

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा। इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ २८ ॥ ऋ० ५। ८। १७। ४१ ॥

व्याख्यान— हे ईश्वर! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सब के पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे ईश्वर तथा सब से बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहने वाले "ओजसा" अनन्त पराक्रम से युक्त हो, हे इन्द्र महाराजाधिराज! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो, आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ॥ २८ ॥

* मूल प्रार्थना *

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत । गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ॥ २९ ॥ ऋ० ८।४।९।१२॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! "रक्षस्विने, भद्रं, नेह" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना "नावयै" धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो तथा "नोपया, उत" अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिये नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियां दुग्ध देनेवाली गौ आदि वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य, "श्रवस्यते" विद्या विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्य जन तथा इनके लिये "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो "व ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर ! आप सर्वरक्षक अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं। जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है अन्य को नहीं ॥ २९ ॥

मूल स्तुति.

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥ ऋ० ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान— हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सब को अपने में वसानेवाले और सब में आप वसनेवाले हो तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाश-स्वरूप ! आप ही सब के सुखकारक और सुखस्वरूप हो तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशैक घनमय हो, हे भगवन् ! ऐसे जो आप उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्ट-ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

मूल प्रार्थना·

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान– हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा सब भुवनों का स्वामी "कम्" सब का सुखदाता और "अभिश्रीः" सब का निधि (शोभाकारक) है, "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है "वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमतौ अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट ज्ञान में) हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों, हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ॥ ३१ ॥

मूल स्तुति

न यस्य द्यावापृथिवी न मर्त्ता आपश्चन न शवसो अन्तमापुः । स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३२ ॥
ऋ० १ । ७ । १० । १५ ॥

व्याख्यान— हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवता" विद्वान् सूर्यादि बुद्ध्यादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य "आपश्च न" आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त, (इन से विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है, सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है, सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ॥ ३२ ॥

मूल प्रार्थना

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ३३ ॥ ऋ०. १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान—हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो जो विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान (जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित हैं, सो आप हे कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेद" धनैश्वर्यादि का "निदहाति" नित्य दहन करो जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे तथा "नः" हम को "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है, "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

मूल स्तुति

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा। चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३४ ॥ ऋ० १। ७। १०। १२॥

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन्! आप "वज्रभृत्" अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अतएव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो "भीमः" आप की न्याय आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयङ्कर भय देनेवाले हो। "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो "शतनीथः" सैकड़ों असङ्ख्यात पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हो "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो और सब के प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबलवाले हो "न, चम्रीषः" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "शवसा, पाञ्चजन्यः" स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पांच प्राणों के) जनक हो। "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो सो आप "इन्द्रः" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े॥३४॥

मूल प्रार्थना.

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ३५ ॥ ऋ० १ । १ । ३१ । ६ ॥

व्याख्यान—हे "शतक्रतो" अनन्त क्रियेश्वर ! आप असङ्ख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियायुक्त हो, सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विज्ञानादि युक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्त्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं, नः, काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो । फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आप का स्तवन (स्तुति) करें । हम को दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता, आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

मूल स्तुति.

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः ।
सुमृळीको न आविश ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान— हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आप को "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयाम" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं "सुमृळीको, नः, आविश" क्योंकि हम को सुन्दर सुख देनेवाले आप ही हो, सो कृपा करके हम को आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्या अन्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों ॥ ३६ ॥

मूल प्रार्थना.

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥ ३७ ॥ ऋ० १ । ६ ।
२१ । १३ ॥

व्याख्यान— हे "सोम" सोम्य सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, नो, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो (दृष्टान्त) जैसे सूर्य्यकी किरण वि-द्वानों का मन और गाय, पशु अपने २ विषय और घासा-दि में रमण करते हैं * वा जैसे "मर्य्य, इव, स्व, ओक्ये" मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिस से हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥ ३७ ॥

* दृष्टान्त का एकदेश रमणमात्र लेना ।

मूल स्तुति.

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ ३८ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । १२ ॥

व्याख्यान— हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ानेवाला है तथा "अमीवहा" शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन विनाश करनेवाला है "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है "पुष्टिवर्धनः" अपने शरीर इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि को बढ़ानेवाला है "सुमित्रः, सोम, नो, भव" सुन्दर यथावत् सब का परममित्र वही है सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आप से भी रक्खें ॥ ३८ ॥

मूल प्रार्थना.

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥ ३९ ॥ ऋ० १। ७। ५। ६ ॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन्! "त्वं हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्वतोमुख हो, हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आप का मुख है हे कृपालो! "अप, नः, शोशुचदघम्" आप की इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट होजाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आप की भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ॥ ३९ ॥

मूल स्तुति

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् । ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४० ॥ ऋ० १ । ७ । ३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमीळत" उस अग्नि की स्तुति करो, कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सब का मुख्य कारण है तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सब का जनक है, हे "विशः" मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ जिसको अपने दीनता से कहते हैं, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते और जानते हैं "ऊर्जः पुत्रं, भरतम्" पृथिव्यादि जगत्रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करनेवाला तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है, उसी को "देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥ ४० ॥

मूल प्रार्थना.

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् । स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४१ ॥ ऋ० १ । ७ । ६ । ७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम कुशलता का "त्राम्" रक्षक "कृण्वत" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो । क्योंकि "सः, विश्वस्य" सो करुणामय सब जगत् पर करुणा करनेवाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं, सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, जिसकी रक्षा से हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥ ४१ ॥

मूल स्तुति.

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् । विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४२ ॥ ऋ० १ । ७ । ३ । २ ॥

व्याख्यान— हे मनुष्यो ! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई कार्य नहीं था, तब सृष्टि की आदि में स्वप्रकाश स्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की इच्छायुता (विचार) और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोकलोकान्तर रचे हैं जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है, उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को "देवाः" विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं, हम लोग उसी को भजें ॥ ४२ ॥

मूल प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । ७ । १४ । ४ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमात्मन्! "त्वया, युजा, वयं, जयेम" आप के साथ वर्त्तमान आप की सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें, कैसा वह शत्रु? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर! "भरे भरे अस्माकमंशमुद्वा" युद्ध २ में हमारे अंश (बल) सेना का "उदवा" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों, किन्तु जिनको आप की सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है, हे "इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर! "शत्रूणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे "अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः, सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ४३ ॥

मूल स्तुति

यो विश्व॑स्य॒ जग॑तः प्राण॒तस्पति॒र्यो ब्र॒ह्मणे॑ प्र॒थमो॒ गा अवि॑न्दत्। इन्द्रो॒ यो दस्यूँ॒रध॑राँ अ॒वाति॑रन्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥ ४४ ॥ ऋ० १ । ७ । १२ । ५ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतनावाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "ब्रह्मणे, गां, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है। और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा, डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है, "मरुत्वन्तं सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिल के मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द, बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् हो के बुलावें, वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

मूल प्रार्थना।

मृळा नो॑ रुद्रोत नो॒ मय॑स्कृधि क्षयद्वी॑राय॒ नम॑सा विधेम ते। यच्छं च॒ योश्च॒ मनु॑राये॒जे पि॒ता तद॑श्याम॒ तव॑ रुद्र॒ प्रणी॑तिषु ॥ ४५ ॥ ऋ० १।८।५।२॥

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! हमको "मृड" सुखी कर तथा "मयस्कृधि" हम को मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादक कर "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर "यच्छम्" हे रुद्र! आप हमारे पिता (पालक) हो हमारी सब प्रजा को सुखी कर "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेक विध लाड़न करता है वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन् "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्त्ती राज्य को आप के अनुग्रह से प्राप्त हों ॥ ४५ ॥

मूल स्तुति

देवो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ । पु॒रः॒ सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टे॒व नारी॑ ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । ५ । १९ । ३ ॥

व्याख्यान— हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवो, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है और "विश्वधाया, उपक्षेति" विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है तथा जो सब जगत् का परममित्र अर्थात् जैसे "प्रियमित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है और कोई भी नहीं "पुरः सदः, शर्मसदो न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं वा जैसे "न वीराः" पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी

रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात दिन तन, मन, धन और अति-प्रेम से अनुकूल रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिल के परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ॥ ४६ ॥

मूल प्रार्थना

सा मां सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च । विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ ४७ ॥ ऋ० ७ । ८ । १२ । २ ॥

व्याख्यान— हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! "सा मां सत्योक्तिः" आप की सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया वह "विश्वतः, परि पातु, नः" हम को सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करें "यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त "ततनत्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो, "विश्व मन्य०" आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में)

"नि विशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो "यदेजति" जिस समय यह जगत् आप के सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें "विश्वाहापो, विश्वाहा" जो २ विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आप के सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो, परन्तु सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

मूल स्तुति.

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूना-
मसि चारुरध्वरे । शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने
सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥ ऋ० १ ।
६ । ३२ । १३ ॥

व्याख्यान— हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें, हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवो, देवानामसि" देवों (परमविद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्य्यरूप मित्र सर्व सुखकारक सब के सखा हो "वसु०" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास करानेवाले हो तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो, हे परमात्मन् ! "सप्रथस्तमे सख्ये, मर्शर्मणि तव" आप के अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हम को कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥ ४८ ॥

मूल प्रार्थना.

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः । आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा नः॒ पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि ॥ ४९ ॥ ऋ॰ १ । ७ । १९ । ८ ॥

व्याख्यान— हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! "मा, नो, वधी." हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हम को मत गिरावे, "मा परा दाः" हम से अलग आप कभी मत हो "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावे, "आण्डा मा०" हमारे गर्भों का विदारण मत कर, हे "मघवन्" सर्वशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर, "मा, नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर, "सहजानुषाणि" जो २ हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ॥ ४९ ॥

मूल प्रार्थना

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उ॒क्षन्त॑मु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्। मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॑ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ॥ ५० ॥ ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ॥

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयौ॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः। वी॒रान्मा नो॑ रुद्र भामि॒तो व॑धीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित्त्वा॑ हवामहे ॥ ५१ ॥ ऋ० १ । ८ । ६ । ८ ॥

व्याख्यान— हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो तथा "मा नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो "मा, नस्तोके"

कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरें में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करनेवाले इन में, "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो हम लोग आप को "सदमित्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं, हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आप से यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥ ५० ॥ ५१ ॥



मूल प्रार्थना.

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ ५२ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । २ ॥

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः । यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ५३ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । ३ ॥

व्याख्यान— हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु"

आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) की "शंससि" प्रशंसा करते हो वैसे हम को भी यथावत् प्रशंसित करो जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये, आप "वृषववाजी" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देनेवाले तथा महा बलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो जैसे कि वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो "शिशुमतिः" हम लोग आप की कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आप को ही भजें "आसर्वतो नः शकुने" हे शकुने ! सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें "विश्वतो, नः श०" हे सब को सुख देनेवाले ईश्वर! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो "आवदँस्त्वं शकुने" हे शकुने जगदीश्वर !

आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष सुख का निरन्तर उपदेश कीजिये "तूष्णीमासीनः सु०" हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ "चिकिद्धि नः" कृपा से हमको अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों "यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुंचाते हुए आप का (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिर्वदसि" कर्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो वैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीरः" अत्यन्त शूरवीर हो के बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आप की स्तुति, आपका उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना तथा आप का यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें सुनें और आप के अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां महाविदुषां
श्रीयुत विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
दयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचित आर्य्या-
भिविनये प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत् ।
समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥



ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः ॥

अथ द्वितीयः प्रकाशः ॥

ओ३म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपाठक १० । प्रथमानुवाकः ॥ १ ॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों, आप की कृपा से हम लोग सदैव आप की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करैं तथा आप को ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद्, परमगुर्वादि जानैं, क्षणमात्र भी आप को भूल के न रहैं, आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानैं, आप के अनुग्रह से हम सब लोग

परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों, एक दू-सरे का दुःख न देख सकैं, स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्ड रहित करैं "सह, नौ, भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करैं हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगैं कि आप हम को अपने अनन्त परमानन्द के भागी करैं उस आनन्द से हम लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें "सह वीर्य्यं, करवावहै" आप की सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों "तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन् ! आप की कृपादृष्टि से हम लोगों का पठनपाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्यप्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्त्ती राज्य भोगैं, हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करैं जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातन मतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखंडमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों। "मा, विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर ! आप के सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेश अर्थात् अप्रीति न रहे जिससे हम लोग कभी परस्पर विद्वेष न करैं, किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इन को परस्पर सब

के सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें "ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः" हे भगवन् ! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से होता है और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है, हे कृपासागर ! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें, हे विश्वगुरो ! मुझ को असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर, हे जगन्मङ्गलमय ! सब दुःखों से मुझ को छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर। (हे प्रजापते ! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, परमैश्वर्येण, संयोजय) हे प्रजापते ! मुझ को अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व, गवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्त्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उस को शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य ! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझ को सब रोगों से छुड़ा के परम नैरोग्य दे। महाराजाधिराज ! जिससे मैं शुद्ध होके आप की सेवा में स्थिर होऊं (हे न्यायाधीश !

कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानै-ष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्त-मेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को कृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर, मैं अत्यन्त दीन होके यही मांगता हूं कि मैं आप और आप की आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं, हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राण-जीवन, सुराज्यप्रद ! मेरे प्राणवाले आदि आप ही हो, मेरा सहायक आप के बिना कोई नहीं है, हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आप का राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो आप के राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हम को शीघ्र ही कर, हे न्यायप्रिय ! हम को भी न्यायप्रिय यथावत् कर, हे धर्माधीश ! हम को धर्म में स्थिर रख, हे क-रुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं वैसे ही आप हमारा पालन करो ॥ १ ॥

मूल स्तुति

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्ध-मपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्या-थातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥
यजुर्वेदे । अध्याय ४० । श्लोक ८ ॥

व्याख्यान— "स, पर्य्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, "शुक्रम्" सब जगत् का करनेवाला वही है "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देहधारण कभी नहीं करता, उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशीभाव भी उस में नहीं है, क्योंकि उस में छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता।

"शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है, "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है, "कविः" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता, "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करनेवाला है, "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सब के ऊपर विराजमान है, "स्वयम्भूः" जिस का आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सब का आदिकारण है, "याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः, समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है और सब का आदिकारण परमात्मा है ऐसा अवश्य मानना चाहिये ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिये, विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है, क्योंकि

हम लोगों के लिये उस ने सब पदार्थों का दान दिया है तो विद्यादान क्यों न करेगा सर्वोत्कृष्ट विद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है, जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेदपुस्तक भी है अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अधिक नहीं है अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" और 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" मेरे किये ग्रन्थों में देख लेना ॥ २ ॥

मूल प्रार्थना.

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३ ॥ यजु० ३६ । १८ ॥

व्याख्यान— हे अनन्तबल महावीर ईश्वर ! "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्णकर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करनेवाला मुझ को मत रक्खो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को विद्या सत्य धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा सामर्थ्य से स्थित करो "दृꣳह मा" हे परमैश्वर्यवन् भगवन् ! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझ को बढ़ा "मित्रस्येत्यादि०" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन् ! सब भूत प्राणीमात्र मित्रदृष्टि से यथावत् मुझको देखें सब मेरे मित्र होजायँ कोई मुझ से किञ्चिन्मात्र भी वैर न करे "मित्रस्याऽहं, चेत्यादि" हे परमात्मन् ! आप की कृपा से मैं भी निर्वैर हो के सब चराचर जगत् को मित्रदृष्टि से अपने प्राणवत् प्रिय जानूं अर्थात् "मित्रस्य, चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर अपना वर्त्ताव करें अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है सब को यही मान्य होने के योग्य है ॥ ३ ॥

मूल स्तुति

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ ४ ॥
यजु० ३२ । १ ॥

व्याख्यान— जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है (ब्रह्मह्यग्निः शतपथे) सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्व जगत्कर्तृ-ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं "तदादित्यः" जिस का कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है "तद्वायुः" सब जगत् का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान् प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है इससे ईश्वर का नाम वायु है पूर्वोक्त प्रमाण से "तदु चन्द्रमाः"

जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देनेवाला है इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना "तदेव, शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ानेवाला है "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से आप नामक जानना "स, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है अन्य कोई नहीं उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें अन्य को नहीं ॥ ४ ॥

मूल प्रार्थना

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ ५ ॥ यजु० ३६ । १ ॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन् ! आप की कृपासे मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त होके उसका वक्ता होऊं तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊं ऐसे ही सामवेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊं "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझ को आप देवें अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं "सहौजः" नैरोग्यदृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं "मयि, प्राणापानौ" हे सर्वजनबलशरीरजीवनाधार ! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल पुष्टि सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करनेवाले हों उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुखयुक्त आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूं ॥ ५ ॥

मूल स्तुति

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ६ ॥ यजु० ३२ । १० ॥

व्याख्यान— वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और सहायक है तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करनेवाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता पूर्ण काम की सिद्धि करनेवाला वही है सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करनेवाला एक परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब धाम अर्थात् अनेक लोक लोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वांसो हि देवाः शतपथ ब्रा०) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में अर्थात् सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो के परमानन्द में रहते हैं, तृतीयेत्यादि एक स्थूल (जगत् पृथिव्यादि) दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "अध्यैरयन्त"

धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्तते हैं सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देश काल वस्तु परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं उससे दुःखसागर में नहीं गिरते ॥ ६ ॥

मूल प्रार्थना

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७ ॥ यजु० ३६ । २२ ॥

व्याख्यान— हे महेश्वर, दयालो! जिस २ देशसे आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो उस २ देश से हमको अभय करो अर्थात् जहां २ से हमको भय प्राप्त होने लगे वहां २ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भय रहित) करो तथा प्रजा से हम को सुख करो, हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे, भय देनेवाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हम को अभय करो, किंच किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो जिससे हम लोग निर्भय हो के सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आप का राज्य तथा आपकी भक्ति करें ॥ ७ ॥

मूल स्तुति.

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥ यजु० ३१ । १८ ॥

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरि शयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें उसको कभी न भूलें अन्य किसी को ईश्वर न जानें वह कैसा है कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है "आदित्यवर्णम्" आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है किंच "तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है, विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के

ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "तमेव विदित्वेत्यादि०" उस परमात्मा को जान के जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सक्ता है अन्यथा नहीं क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है, सब मनुष्यों को इस में वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८ ॥



मूल प्रार्थना

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ६ ॥ यजु० १९ । ९ ॥

व्याख्यान— हे स्वप्रकाश ! अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्य विज्ञान तेजस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं । हे अनन्त वीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें, हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो, हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ, हे अनन्त सहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे मैं आप की भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आप के अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं ॥ ६ ॥

मूल स्तुति

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ १० ॥ यजु० ३२ । ११ ॥

व्याख्यान— सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्य्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त होके परिपूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके विना अपर्याप्त (खाली) नहीं "प्रथमजाम्" मुख्य प्राणी अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥ १० ॥

मूल प्रार्थना

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः । भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥ ११ ॥ यजु० ३४ । ३६ ॥

व्याख्यान— हे भगवन् ! परमैश्वर्यवान् भग ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा "भगप्रणेतः" आप के ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं, आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ, सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्रय छेदन करके हम को परमैश्वर्यवाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो । हे "सत्यराधः" भगवन्! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हम को दीजिये तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं है, हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिये जिससे हम लोग आप के गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इन को यथावत् प्राप्त हों,

हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदव:" (उद्गय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें "भग प्रनो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक! हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हम को सदा के लिये दीजिये, हे सर्वशक्तिमन् ! आप की कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम २ पुरुष स्त्री और सन्तान भृत्यवाले हों आप से यह हमारी अधिक प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मूर्ख न रहे, न उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो निन्दा कभी न हो ॥ ११ ॥

मूल स्तुति.

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ १२ ॥ यजु० ४० । ५ ॥

व्याख्यान— "तद् एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी २ चाल पर चला रहा है सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा परन्तु वह सब में पूर्ण है कभी चलायमान नहीं होता, अतएव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता एकरस निश्चल हो के भरा है, विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं, "तद्दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि २ वर्ष तक उस को नहीं प्राप्त होते इससे वे तबतक जन्ममरणादि दुःखसागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं कि जबतक उसको नहीं जानते "तद्वन्तिके" सत्यवादी सत्यकारी सत्यमानी जितेन्द्रिय सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील

पुरुषों के "अन्तिके" अत्यन्त निकट है, किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, वह आत्मा का भी आत्मा है क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है वह अखण्डैकरस सब में व्यापक हो रहा है उसी को जानने से सुख और मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

मूल प्रार्थना.

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳪं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥१३॥ यजु० १८ । २९ ॥

व्याख्यान— (यज्ञो वै विष्णुः यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रु०) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके अर्थ अतिश्रद्धा से सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर ! जो यह आप की आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें इस कारण

हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी, मन, आत्मा, जीव, ब्रह्मा, वेदविद्या और विद्वान् ज्योति (सूर्य्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आप के समर्पण करते हैं, हम लोग तो केवल आप के ही शरण हैं जैसे आप की इच्छा हो वैसा हमारे लिये आप कीजिये, परन्तु हम लोग आप के सन्तान आप की कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों जबतक जीवें तबतक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहैं और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहैं। हे महादेवामृत! हम लोग देव (परमविद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आप की प्राप्ति उस को प्राप्त हों "वेट्स्वाहा" आप की आज्ञा का पालन और आप की प्राप्ति में उद्योगी हों तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करैं इससे विपरीत कभी नहीं, हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो आप के सहाय से सर्वत्र हम को विजय और सुख मिले ॥ १३ ॥

मूल स्तुति

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ १४ ॥ यजु० ८ । ३६ ॥

व्याख्यान— जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना जो "विश्वा भुवनानि" सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को आवेश प्रविष्ट हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है । सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना "स षोडशी" सोलहकला जिस ने उत्पन्न की हैं इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है वे सोलहकला ये हैं—ईक्षण (विचार) १

प्राण २ श्रद्धा ३ आकाश ४ वायु ५ अग्नि ६ जल ७ पृथिवी ८ इन्द्रिय ९ मन १० अन्न ११ वीर्य (पराक्रम) १२ तप (धर्मानुष्ठान) १३ मन्त्र (वेदविद्या) १४ कर्मलोक (चेष्टा-स्थान) १५ और लोकों में नाम १६ इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं, उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ॥ १४ ॥



मूल स्तुति

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ १५॥ यजु० ३। २४॥

व्याख्यान— (ब्रह्म ह्यग्निः, इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो, हे स्वस्तिद परमात्मन्! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है वैसे आप हम को सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उन आप की शोभा नहीं होना किन्तु सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं॥ १५॥

मूल स्तुति.

विभूरसि प्रवाहणः। वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेताः। तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ उशिगसि कविः। अङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्यूरसि दुवस्वान्। शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः। परिषद्योऽसि पवमानः। नभोऽसि प्रतक्वा। मृष्टोऽसि हव्यसूदनः। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि। ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्। अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ १६। १७। १८ ॥ यजु० ५। ३१। ३२। ३३ ॥

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्य्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं, विभु आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सब के निर्वाहकारक भी हो, हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक

तथा यथावत् स्थापक हो, हे आत्मन्! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो, हे सर्ववित्! आप तुथ और विश्ववेदा हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ॥ १६ ॥ हे सर्वप्रिय! आप "उशिक्" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिनको चाहते हैं; क्योंकि आप कवि पूर्ण विद्वान् हो तथा आप अङ्घारि हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उस के अरि (शत्रु) हो उस समस्त पाप के नाशक हो तथा "बम्भारिः" स्वभक्तों और सब जगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो, "शुन्ध्युरसि, मार्जालीयः" शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो अन्य कोई नहीं, "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो "परिषद्योसि पवमानः" हे न्यायकारिन्! पवित्र परमेश्वर सभा के आज्ञापक सभ्य सभापति सभाप्रिय सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप पवित्रकारक सभा से ही सुखदायक पवित्रप्रिय आप ही हो, "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से आपका

नाम नभ है तथा "प्रतर्का" सब के ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उस को वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट सुगन्ध रोगनाशक पुष्टिकारक, इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने कराने वाले हो अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो इससे आप का नाम "हव्यसूदन" है, "ऋतधामसि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन् ! आप का ही धाम स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "ज्योतिः" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हैं ॥ १७ ॥ "समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूतमात्र आप ही में द्रवें हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं, आप सब के कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं, "अजोस्येकपात्" आप का जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आप के किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो "वागस्यैन्द्रमसि

सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ऐन्द्र हो, सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदा (सभास्वरूप) हो 'ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्ष-स्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो जिससे हम लोग सहज से आप को प्राप्त हों "अध्व-नामित्यादि" हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझ को कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझ को स्वस्ति (आनन्द) ही आप की कृपा से रहे किसी प्रकार का दुःख न रहे ॥ १८ ॥

मूल स्तुति.

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥ यजु० ८ । १३ ॥

व्याख्यान— हे सर्व पापप्रणाशक ! "देवकृत:०" इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो अन्य कोई नहीं, एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही अवयजन हो अर्थात् सर्व पापों से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो, हे महानन्तविद्य ! जो २ मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो उन सब पापों का छुड़ानेवाला आप के विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हम को शुद्ध करो ॥ १९ ॥

मूल स्तुति

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २० ॥ यजु० १३ । ४ ॥

व्याख्यान–जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है सो ही प्रथम था वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है, वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्य्यन्त जगत् को रच के धारण करता है, "कस्मै" (कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कस्तस्मै देवाय, शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उस की पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करैं, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करैं, जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है उस की और उस देश भर की अत्यन्त दुर्दशा होती है यह प्रसिद्ध है, इससे चेतो मनुष्यो ! जो तुम को सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुम को कभी सुख न होगा ॥ २० ॥

मूल प्रार्थना.

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ २१ । २२ । २३ ॥ यजु० ३६ । मं० ८ । १० । ११ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्य्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो, हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उन के लिये परमसुखदायक हो तथा "चतुष्पदे" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखकारक हो जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहै ॥ २१ ॥ हे सर्वनियन्तः ! हमारे लिये सुखकारक शीतल मन्द और सुगन्ध सदैव वायु चले, ऐसे सूर्य भी सुखकारक तपे तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जन पूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षा वर्षे जिस से आप के कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहैं ॥ २२ ॥

हे यथार्थे कालपते ! सब दिवस आप के नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें, हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहें, हे सर्व स्वामिन् ! "इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आप के अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों "इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार ! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों, "इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते ! आप की रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज ! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें तथा आप की कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हों, अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों, आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उस में ही तत्पर हों ॥ २३ ॥

मूल स्तुति

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥ २४ ॥ यजु० ३२ । ९ ॥

व्याख्यान—हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सब का धारण और पोषण करनेवाला, सब की बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है उस आप का उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है वह गन्धर्व कहाता है (गच्छतीति गं ब्रह्म तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन पद हैं जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ॥ २४ ॥

मूल प्रार्थना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिस्सर्वꣳ शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २५ ॥ यजु० ३६ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले ! इन लोकों से ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे, अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थ गुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण, ब्रह्म, परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! आप की कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों मुझ को भी शान्ति प्राप्त हो जिससे मैं भी आप की कृपा से शान्त दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित हों ॥२५॥

मूल स्तुति.

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ २६ ॥ यजु० १६ । ४१ ॥

व्याख्यान— हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप संभव हो (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्ष सुख के करनेवाले हो), आप को नमस्कार है, आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आप को मैं नमस्कार करता हूं आप शङ्कर हो आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं तथा मयस्कर अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो, आप शिव (मङ्गलमय) हो तथा आप शिवतर (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो इससे आप को हम लोग वारम्वार नमस्कार करते हैं (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है सो मङ्गलमय ही होता है ॥ २६ ॥

मूल प्रार्थना.

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥ यजु० २५ । २१ ॥

व्याख्यान— हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें, हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आंखों से कल्याण (मंगलसुख) को ही सदा देखें, हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अंग उपांग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपांग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें जिनसे हम लोग स्थिरता से आप की स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥ २७ ॥

मूल स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥२८॥ यजु० १३।३॥

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर! आप बड़ों से भी बड़े हो आप से बड़ा वा आप के तुल्य कोई नहीं है "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो, सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादासहित) "सुरुचः" आप से प्रकाशित हैं, "पुरस्तात्" इन को पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो, (व्यावः) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक् २ यथायोग्य वर्त्ता रहे हो, "वेनः" आप के आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आप की कामना न करे, किन्तु सब ही आप को मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो सब रीति से रक्षक आप ही हो, सो ही परमात्मा "बुध्न्याः" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है वे अन्तरिक्षादि उपमा सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस त्रिविध जगत् के निवासस्थान हैं, सत् विद्यमान स्थूल जगत् असत् अविद्या

चक्षुरादि इन्द्रियों के अगोचर इस विविध जगत् की योनि आदि कारण आपको ही वेद शास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं, इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हैं ॥ २८ ॥



मूल प्रार्थना.

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २९ ॥ यजु० ६ । २२ ॥ ३६ ॥ २३ ॥

व्याख्यान– हे सर्वमित्रसम्पादक! आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधी "सुमित्रिया" (सुखदायक) हम लोगों के लिये सदा हों कभी प्रतिकूल न हों और जो हम से द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं हे न्यायकारिन्! उसके लिये "दुर्मित्रिया" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःखकारक ही हों अर्थात् जो अधर्म करै उस को आप के रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों जिससे वह अधर्म न करै और हम को दुःख न देसकै हम लोग सदा सुखी ही रहैं ॥ २९ ॥

मूल-प्रार्थना.

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२॥ऽआविवेश ॥ ३० ॥ यजु० १७। १७॥

व्याख्यान—"होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेनेवाला परमात्मा ही है "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब लोक लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य कारण में होम (प्रलय करके) "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित है सो ही हमारा पिता है फिर जब द्रविण द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है इस चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्तस्वरूप से आच्छादित करता है और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उस में प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है वही हमारा निश्चित पिता है उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि की सेवा करता है वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सर्वत्र दुःखभागी होता है जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ॥ ३० ॥

मूल स्तुति.

इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्मा । अमेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ ३१ ॥ यजु० ३८ । १४ ॥

व्याख्यान— हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हम को "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन वा कुपच के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हम को पुष्ट कर, हे वेदोत्पादक ! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों, हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवी-

भ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर, हे सुष्टु धर्मशील ! तू धर्मकारी हो तथा धैर्यस्वरूप ही हो। हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर, "अमेनि" तू निर्वैर है हम को भी निर्वैर कर तथा कृपा-दृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुखी न हों, हे सर्वाधिपते ! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त) क्षत्र (बुद्धि विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त) "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुण-युक्त उत्तम हमारे राज्य में हों इन सब का धारण आप ही करो जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आप की कृपा से सदा बना रहे ॥ ३१ ॥

मूल स्तुति

किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ३२ ॥ यजु० १७ । १८ ॥

व्याख्यान —(प्रश्नोत्तर विद्या से) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करनेवाला अधिष्ठान क्या है ? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं, (उत्तर) "यतः" जिस का विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्ग पर्यन्त रच के अपनी महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं, सब का भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर "विश्वचक्षाः" सब संसार का द्रष्टा है उस को छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा ? ॥ ३२ ॥

मूल प्रार्थना

तनपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ॥ ३३ ॥ यजु० ३ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है । सो शरीर को कृपा से पालन कर, हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले हो मुझ को सुखरूप उत्तमायु दीजिये, हे अनन्त विद्यातेजयुक्त ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो मुझ को सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हम को सदा आनन्द में रक्खो और जो २ कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो उस २ को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हम को न रहे, आप के पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज़ अथवा सुख पिता माता को छोड़ किससे मांगें ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ॥ ३३ ॥

मूल प्रार्थना.

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३४ ॥ यजु० १७। १९ ॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिस का चक्षु (दृष्टि) जिस से अदृष्ट कोई वस्तु नहीं तथा सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक् सर्ववक्ता सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है उसी से जब डरेगा तभी धर्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है, पृथिवी से लेके स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है जिस २ ने जैसा २ पाप वा पुण्य किया है उस २ को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन—कम्पन) यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है उसी निराकार अज अनन्त सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये वही याचनीय पूजनीय हमारा प्रभु स्वामी इष्टदेव है उसी से सुख हम को होगा अन्य से कभी नहीं ॥ ३४ ॥

मूल स्तुति.

भूर्भुवः स्वः। सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि। शᳬस्य पशून्मे पाहि। अथर्य पितुं मे पाहि ॥ ३५ ॥ यजु० ३। ३७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले "स्वः" सुखरूप हो, हम को सुख दीजिये, हे सर्वाध्यक्ष! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊं, हे महापुष्टिप्रद! आप के अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोमलता आदि ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि सर्वपुष्टि युक्त होऊं, हे "नर्य" नरों के हितकारक! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो, हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो, हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर! "पितुम्" घर अन्न की रक्षा कर, हे दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥ ३५ ॥

मूल प्रार्थना.

किछं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २६ ॥ यजु० १७ । २० ॥

व्याख्यान— (प्रश्न) विद्या क्या है? वन और वृक्ष किसको कहते हैं? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेक विध रचना से अनेक पदार्थ रचता है वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि मध्य सुखवाला लोक) तथा नरक (दुःखविशेष) और सब लोकों को रचा है उसी को वन और वृक्ष आदि कहते हैं हे "मनीषिणः" विद्वानो! जो सब भुवनों को धारण करके सब जगत् में और सब के ऊपर विराजमान होरहा है उस के विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो "मनसा" उस के विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है अन्यथा नहीं ॥ २६ ॥

मूल स्तुति

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥ यजु० ३६ । २४ ॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म, "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है "पुरस्तात्" सब का आदि प्रथम कारण वही है "शुक्रम्" सब का करने वाला किंवा शुद्धस्वरूप है "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें, कभी पराधीन न हों अर्थात् ब्रह्मज्ञान बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें, ऐसी कृपा आप करें कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें और स्वाधीन ही रहें ॥ ३८ ॥

मूल प्रार्थना

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥३८॥ यजु० १७।२१॥

व्याख्यान— हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे सुरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आप के सखाओं को कर यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों, हे "स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ानेवाले हैं "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो, आप अपनी उदारता से ही हम को सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आप के प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आप के अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं इस से हम को स्वकृपा से सुखी करें ॥ ३८ ॥

मूल स्तुति.

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ३९ ॥ यजु० ३६ । २ ॥

व्याख्यान— हे सर्वसन्धायकेश्वर ! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय द्वेष, इन के छिद्र, निर्बलता, राग, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापन आप ही करो क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो सो अपनी बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करें जिससे हम लोग आप और आप की आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों, मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें, आप सब भुवनों के पति हैं इसलिये आप से वारंवार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों, हे परमात्मन् ! आप के विना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है, हम को आप का ही सब प्रकार का भरोसा है सो आप ही पूरा करेंगे ॥ ३९ ॥

मूल प्रार्थना।

विश्वकर्म्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् पर एकमाहुः ॥ ४० ॥ यजु० १७ । २६ ॥

व्याख्यान–सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर विश्वकर्मा (विविध-जगदुत्पादक) है तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है "सन्दृक्" यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है, जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं उस को छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं, वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं दुःख को नहीं प्राप्त होते, वह परमात्मा एक अद्वितीय है जिस परमात्मा के सामर्थ्य में सप्त अर्थात् पंच प्राण, सूत्रात्मा

और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप रहता है उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥



मूल स्तुति.

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ ४१ ॥
यजु० ३८ । २० ॥

व्याख्यान—हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणोंवाली नाभि (मर्मस्थान) ऋतु की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आप की कृपा से हों तथा आप की कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो, आप जैसे सर्वसामर्थ्य विस्तीर्ण हो वैसे ही विस्तृत सुख से विस्तार सहित सर्वायु हम को दीजिये, हे ईश ! हम "अपद्वेषः" द्वेष रहित आपकी कृपासे तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों, आप की आज्ञा और आप से भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है इससे अन्य व्रत को कभी न मानें किन्तु आप को "सश्चिम" सदा सेवें यही हमारा परमनिश्चय है इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करैं ॥ ४१ ॥

मूल प्रार्थना.

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ४२ ॥ यजु० १७ । २७ ॥

व्याख्यान— हे मनुष्यो ! जो अपना पिता (नित्य पालन करनेवाला) जनिता (जनक) उत्पादक "विधाता" सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धि-कर्त्ता) "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर धाम अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है जो दिव्य सूर्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं, वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है इसमें शंका नहीं रखनी तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणिमात्र प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उस की आज्ञा और उस के रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान)

करना उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मूल स्तुति.

यज्जाग्रंतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥ यजु० ३४। १ ॥

व्याख्यान— हे धर्मनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा शिवसंकल्प धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आप की कृपा से हो कभी अधर्मकारी न हो, वह मन कैसा है ? कि जागता हुआ पुरुष का दूर २ जाता आता है, दूर जाने का जिस का स्वभाव ही है, अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योतिप्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता, वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आप की कृपा से स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "देवम्" देव (आत्मा का) मुख्यसाधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल का ज्ञाता है, वह आप के वश में ही है उस को आप हमारे वश में यथावत् करें जिस से हम कुकर्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म और आपकी सेवामें ही रहें ॥ ४३ ॥

मूल प्रार्थना

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ४४ ॥ यजु० १७ । ३१ ॥

व्याख्यान— हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है उसको तुम लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथ्यावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो इससे दुःख ही तुम को मिलेगा सुख नहीं, तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय भोगों के लिये ही अवैदिककर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो अतएव उसको तुम नहीं जानते । (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग ये दोनों एक हैं वा नहीं ? (उत्तर) "यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है, जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है

इस से यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं, किंच व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है, इस से जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥ ४४ ॥



मूल स्तुति

भग एव भगवाँ२॥ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ ४५॥ यजु० ३४। ३८॥

व्याख्यान— हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप भग परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो, हे (देवाः) विद्वानो ! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों, हे "भग" परमेश्वर सर्व संसार "तन्त्वा" उन आप को ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आप को प्राप्त होने की इच्छा न करे, सो आप हम को प्रथम से प्राप्त हों फिर कभी हम से आप और ऐश्वर्य अलग न हो आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्म्मानुसार फल होता भी है तथा आप की सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥ ४५ ॥

मूल प्रार्थना.

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥ यजु० २३ । १९ ॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूं तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं, इस से आप को प्रियपति मैं अवश्य जानूं, इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूं, हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आप को ही मैं जानूं, सब का कारण आपका सामर्थ्य है यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं, आप की कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजा-

नि" दूर फेंकूं तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो आप अब शीघ्र हम को प्राप्त होओ जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा ॥ ४६ ॥



मूल प्रार्थना.

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ४७ ॥ यजु० १ । ५ ॥

व्याख्यान— हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूंगा सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता उस विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूं इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य विद्वान् सत्याचरणी आप की भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं ॥ ४७ ॥

मूल स्तुति.

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ऽउ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः । यस्य॑ छा॒यामृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ४८ ॥ यजु० २५ । १३ ॥

व्याख्यान— हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है जीवप्राणदाता तथा "बलदाः" त्रिविध बल—एक मानस विज्ञान बल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षामर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता जैसे कि कान से सुनना, आंख से देखना इसको उलटा कोई नहीं कर सक्ता है, जिसकी छाया—आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये वारम्वार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है, हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है आओ अपने सब

मिल के प्रेम विश्वास और भक्ति करैं, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानैं वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इस में कुछ सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥



मूल स्तुति.

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥४९॥ यजु० ३। ४३॥

व्याख्यान— हे पश्वाधिपते! महात्मन्! आप की ही कृपा से उत्तम २ गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु और अन्न सर्व रोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख जिससे किसी पदार्थ के विना हम को दुःख न हो, हे विद्वानो! "वः" युष्माकम् तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेमकुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिये "शिवम्" मोक्ष सुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊं, मोक्ष सुख और प्रजा सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूं उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ॥ ४९ ॥

मूल प्रार्थना ·

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियञ्जि॒न्वम॑वसे हूमहे व॒यम् । पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ ५० ॥ यजु० २५ । १८ ॥

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उस को हम कब मिलेंगे क्योंकि वह ईशान (सब जगत् का स्वामी) है और ईशान (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है दो प्रकार का जगत् है अर्थात् चर और अचर इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है, उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्द्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि के "रक्षिता" रक्षक हैं तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसा रहित है इसलिये ईश्वर जो निराकार सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो ! उस को मत भूलो, विना उस के कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥ ५० ॥

मूल स्तुति

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥ यजु० २ । १० ॥

व्याख्यान— हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझ में विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो, हे सर्व काम पूर्ण करनेवाले ईश्वर ! आप की कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहैं ॥ ५१ ॥

मूल प्रार्थना.

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषं स्वाहा ॥ ५२ ॥ यजु० ३२ । १३ ॥

व्याख्यान— हे सभापते ! विद्यामय न्यायकारिन् सभासद् सभाप्रिय सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो ऐसी इच्छावाले आप हम को कीजिये किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें किन्तु आप को ही हम सभापति सभाध्यक्ष राजा मानें, आप अद्भुत आश्चर्य विचित्र, शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं, इन्द्र जो जीव उस को कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं, "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं मेधा अर्थात् विद्या सत्यधर्मादि धारणावाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचता हूं सो आप कृपा करके मुझ को देओ "स्वाहा" यही स्वकीय वाक् आह कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है । यही वेद में ईश्वराज्ञा है सो सब मनुष्यों को मानना अवश्य योग्य है ॥ ५२ ॥

मूल स्तुति

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ५३ ॥ यजु० ३२ । १४ ॥

व्याख्यान— हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणावाली बुद्धि को देव (विद्वानों) के वृन्द "उपासते" (धारण करते) हैं तथा यथार्थ पदार्थ-विज्ञानवाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझ को मेधावी कर "स्वाहा" इस को आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो ॥ ५३ ॥

मूल-प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ ५४ ॥ यजु० ३२ । १५ ॥

व्याख्यान— हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो कृपा से मुझ को मेधा सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिये तथा "अग्निः" विज्ञानमय विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाले आप मुझ को अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये * ॥ ५४ ॥

* अनेक बार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ सद्यः दानार्थ है बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है उस के होने से जीव को सब सुख होते हैं इस हेतु से वारम्वार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करनी श्रेष्ठ बात है ॥

मूल स्तुति

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्य ते स्वाहा ॥ ५५ ॥
यजु० ३२ । १६ ॥

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों । हे "देवाः" विद्वानो ! दिव्य ईश्वर गुण परमकृपा आदि उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझ में अचलता से धारण कराओ उस को मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिये तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुत
विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां
शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित आर्याभिविनये
द्वितीयः प्रकाशः
सम्पूर्णः ॥
समाप्तश्चाऽयङ्ग्रन्थः ॥

महर्षि

श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजी

विरचित

सर्वग्रन्थ

निम्नलिखित पते पर मिलेंगे,

सूचीपत्र

मंगाकर देखें, बिना मूल्य

भेजा जाता है.

☞ प्रबन्धकर्त्ता—

वैदिक-पुस्तकालय,

अजमेर.